



अनुपस्थित मूल्यांकन

डॉ० विजय शंकर मिश्र

हिन्दी विभाग, सत्यवती कॉलेज (सांध्य), नई दिल्ली भारत।

प्रस्तावना

जायसी अपने चरित्रों के कर्मों के विश्लेषण में रुचि नहीं रखते। इसीलिए पदमावत में 'मूल्यांकन' अनुपस्थित है। वर्णनों-चित्रणों पर पूरा जोर है और बहुत आकर्षक भी हैं। लेकिन कर्मों की वस्तुपरक समीक्षा का निषेध भावना को संपूर्ण रूप से बुद्धि-निरपेक्ष कर देता है। ऐसे में वह विलाप बन जाता है। विलापी अवस्थाएँ हृदयविदारक हो सकती हैं, लेकिन वे सार्थक एवं दीर्घजीवी नहीं होती। जब तक 'जीवन' है, तब तक वही इस विश्व का महानतम-उज्ज्वलतम सत्य है। वही अभिप्रेत है। यह भी स्थापित-प्रामाणिक सत्य है कि 'व्यक्ति' मरता है, मानवीय समाज नहीं। मनुष्यों का संसार निरंतर गतिशील है, चिरंतन है। जायसी की मूल रुचि विशिष्ट व्यक्तियों में है, समाजों या समूहों में नहीं। व्यक्ति मरते हैं। इसीलिए वे प्रलाप करते हैं, जिसके फलस्वरूप षाश्वत गतिमान जीवन का तर्क नेपथ्य में चला जाता है। अंतिम कडवक में मृत्यु-संगीत प्रतिध्वनित होता है। इसमें विषाद स्वप्निल सुखों की कल्पनाओं में आश्रय लेता है। मोहन कल्पनाएँ किसी तरह के विकल्प देने में रुचि नहीं रखती। वे स्थितियों की समीक्षा पर आधारित मंतव्य भी नहीं देती। और-तो-और व्यापक सामाजिक सरोकारों के प्रति सैद्धान्तिक निरपेक्षता भिन्नार्थक टिप्पणियाँ देने का भी निषेध करती है। ऐसी अवस्था में शोकाभिभूत कवि बेकाबू हो जाता है। अतीत के तथ्यों से वह शिक्षा नहीं ग्रहण करता, वर्तमान के सत्य अन्य भाँति से स्थितियों को समझने की प्रेरणा नहीं दे पाते और भविष्य की संभावनाएँ उत्साहित-उत्तेजित-कर्मशील नहीं बना पाती। आत्मकेन्द्रित महाकवि की चिन्ता है, तो केवल 'अपनी' और 'अपने द्वारा' सृजित मनोहर चरित्रों की। इसलिए कल्पना प्रत्यागमन करके वहीं लौटती है, जहाँ से यात्रा प्रारंभ हुई थी। जायसी पात्रों को काल्पनिक-स्मृति रूप में जीवित करते हैं। उनका यष अमर रहेगा। अलाउद्दीन खिल्जी और राघव चेतन का भी। समस्त चरित्रों के प्रति समान भावना की प्रेरणा एक विशेष तरह की सर्वश्रेष्ठतावादी समझ से प्राप्त हुई है। यह ध्यान देने की बात है कि जायसीने ग्रन्थान्त में अपनी कवित्व-शक्ति की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि नागमती की स्मृति नहीं की। इस पुष्प की सुगंध को उन्होंने पूर्ण उपेक्षित किया है। उसकी कीर्ति नहीं फैलेगी। उसके अतिरिक्त समस्त चरित्र धन्य है। इसका मूलभूत कारण उसका श्रेष्ठ होते हुए भी सर्वोत्तम नहीं होना है। "पदमावती नागमती सती खण्ड" और "उपसंहार खण्ड" को ग्रंथ में वर्णित कथा से काट कर स्वतन्त्र रूप में पढ़ने पर महाकवि की विषादानुभूति एवं प्रेम-भावना मानस को अभिभूत कर देती है। लेकिन ऐसा करने पर उनका विचारवाद विवृत नहीं हो पाता, साथ ही भावना का तार्किक सत्य भी छिपा रह जाता है।

विशेषाधिकार प्राप्त आभिजात्य समूह अपनी सर्वसमर्थ-सर्वशक्तिमान-सर्वोच्च स्थिति को किसी भी विधि से षाश्वत बनाए रखने की स्पृहा रखते हैं। यह इतिहास का सत्य है। पदमावत इन्हीं समूहों की कथा को बेहद आकर्षक रूप में वर्णित

करता है। समस्त चरित्रों को समान (तथाकथित आध्यात्मिक) निकष पर तौलते हुए चिरजीवंत यश का अधिकारी घोषित करना इन समूहों की उक्त आकांक्षा को समर्थन देना है। जायसी स्पृहणीय मूल्यों, व्यवस्थाओं को बनाने तथा बदलने वाली शक्तियों, औसत मनुष्य की सहज भावनाओं, व्यापक सामाजिक सरोकारों आदि के विश्लेषण में रुचि रखने वाले महाकवि नहीं है। यह उनका प्रकृत विषय नहीं है। वे स्वर्णकाल अर्थात् सर्वोत्तमता के अदभुत चित्रणकर्ता हैं। इसीलिए उनके प्रबंधकाव्य के समस्त चरित्र रचनात्मक प्रतीक बनने के स्थान पर अधिकाधिक संकुचित होती अतीव रोमांचक इकाइयाँ हैं। परिणामस्वरूप उनकी अनुभूतियाँ क्षणिक उत्तेजनाओं के रूप में प्रकट होती हैं। वे दीर्घकालिक भावनात्मक विचार अथवा विचारात्मक भाव नहीं बन पाती। ग्रंथ के प्रेम एवं सौन्दर्य चित्रणों में प्रायः सर्वव्याप्त अतीव प्रभावी स्खलन-संकेतक तीव्रता का मूलभूत कारण यही है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने अपने महान् नाटक 'स्कंदगुप्त' में लिखा है कि परिवर्तन रुका कि महापरिवर्तन, प्रलय हुआ। प्रकृति के इस अटल प्राकृतिक सत्य को पदमावत का रचनाकार विवशतावश स्वीकार करते हुए भी नकार देता है। स्वीकार इसलिए करता है कि जो पैदा हुआ है, वह मरेगा अवश्य। नकारने का कारण यह कि जायसी निजी अभावों से उद्भूत त्रासक शून्य को भरने के लिए निर्मित किए गए समग्रतः मनोरम समानांतर लोक को ज़मीन के यथार्थ से टकरा कर ध्वस्त होते नहीं देख सकते। इस लोक के प्रायः समस्त चरित्र सुविधानुसार स्थान-परिवर्तन करने वाली वे मनः स्थितियाँ हैं जो स्वर्गीय सुखों पर सार्वकालिक अधिकार चाहती हैं। लेकिन इस लोक को भी मिट्टी में तो मिलना ही है। ऐसे में महाकवि उन्हें काल्पनिक-स्मृति-सुगंध रूप में पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न करता है। वह उस लोक को सगुण अवस्था त्याग कर निर्गुण रूप में लौटाने का दुर्दमनीय प्रयास करता है। इसीलिए उन्होंने रत्नसेन, पदमावती, हीरामन के साथ-साथ अलाउद्दीन और राघव चेतना की कीर्ति को भी चिरंतन घोषित किया है।

इन्हीं कारणों से उक्त चरित्रों का सर्वश्रेष्ठतावादी वर्ग 'शक्ति' के विविध केन्द्रों का स्वामी होते हुए भी नितांत संकुचित दायरे में सिमटा रहता है। इसे समस्त सुख-सुविधाओं पर संपूर्ण अधिकार चाहिए। यह अधिकार ही सर्वोत्तम होने की निशानी है। मानवीय समाजों के अपेक्षित-इच्छित मूल्यों से इन्हें वास्तव में कुछ लेना-देना नहीं है। इसीलिए पदमावत में नागमती के अतिरिक्त समस्त चरित्र भीतर से स्थायी व्यभिचारी हैं। लोक विख्यात पदमावती महान्-पूज्य सती देवी हैं, लेकिन जायसी की पदमावती वैसी नहीं हैं। आभास ऐसा मिलता है कि ये चरित्र नितांत एकनिष्ठ प्रेमवाहक हैं। लेकिन उसका कारण प्रेम, दाम्पत्य संबंध एवं पातिव्रत से संबंधित कतिपय सांस्कृतिक मूल्य हैं। पदमावत में इन मूल्यों को रेखांकित करते कुछ बड़े ही मार्मिक प्रसंग हैं। लेकिन उन्हें ग्रन्थ के

केन्द्रीय विचारवाद से अलग करके नहीं विवेचित किया जा सकता। श्रेष्ठों के समूह में सर्वश्रेष्ठ के स्वामित्व को स्वीकार करने पर उत्तम भी उपेक्षित कर दिया जाता है। रूप के साम्राज्य की एकच्छत्र साम्राज्ञी पद्मावती की सर्वश्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करने पर रत्नसेन अपनी पहली पत्नी नागमती को व्यावहारिक तौर पर निर्ममतापूर्वक त्याग देता है। वह उसे अपने मन से निष्कासित कर देता है। कवि इस कार्य में अपने काव्य के नायक की सहायता करता है। इसी प्रकार सर्वोच्च राजनीतिक सत्ता के एकमात्र स्वामी अलाउद्दीन के कथा में अवतरित होते ही जायसी अपने नायक का साथ छोड़ देते हैं। उनके हस्तक्षेप के कारण सर्वशक्तिमान सुल्तान के अपमान की तो बात क्या, उस की शान में गुस्ताखी करने वाले एक भी शब्द का उच्चारण रत्नसेन और पद्मावती सहित कोई भी पात्र नहीं कर पाता। समग्र प्रबंधकाव्य में नागमती के अतिरिक्त किसी चरित्र की अन्य चरित्र के प्रति अखण्डित प्रतिबद्धता नहीं है। सुन्दरतर शरीर की ओर आकर्षित होने वाला रत्नसेन बात-बात में झूठ बोलता है, पद्मावती को भोगने के बाद एक क्षण भी अपना राजस्व-बोध विस्मृत नहीं करता, जायसी की पद्मावती पति रत्नसेन को यह चेतावनी देने से परहेज नहीं करती कि वह उसका एकमात्र प्रेमी नहीं है। जायसी ऐसे स्पष्ट संकेत देते हैं कि जैसे वह अलाउद्दीन के प्रति भी कहीं-न-कहीं द्रवित अवश्य हुई थी। देवपाल की दूती कुमुदिनी को दिए गए उसके उत्तरों से साफ-साफ दर्शित होता है कि कुटिनी के निवेदनों को अस्वीकृत करने में उसे दुःसह्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जायसी का उद्देश्य रागात्मक संबंधों के लालित्य को रेखांकित करना नहीं हो कर 'महत्ता' की महिमा का गान करना है। इसमें उन्हें एक बड़ी सीमा तक सफलता मिली है।

पद्मावत के अंतिम तीन खण्ड लघ्वाकार होते हुए भी अपनी विलक्षण मार्मिकता से सहृदयों को भावविभोर कर देते हैं। इनमें निर्वेद, शोक एवं आनंद का अद्भुत सम्मिश्रण देखा गया है। प्रायः समस्त समीक्षकों के अनुसार जायसी तटस्थ हैं। उनकी करुणा कथा को शांत रस में पर्यवसित कर देती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "घटनाओं को आदर्श परिणाम पर पहुँचाने का लक्ष्य कवि का नहीं है।... कर्मों के लौकिक शुभाशुभ परिणाम दिखाना जायसी का उद्देश्य नहीं प्रतीत होता। संसार की गति जैसी दिखाई पड़ती है वैसी ही उन्होंने रखी है।... पर आदर्श परिणाम के विधान पर लक्ष्य न रहने पर भी जो बात बचानी चाहिए वह बच गई है। किसी सत्पात्र का न तो ऐसा भीषण परिणाम ही दिखाया गया है, जिससे चित्त को क्षोभ प्राप्त होता हो और न किसी बुरे पात्र की ऐसी सुख-समृद्धि ही दिखाई गई है जिससे अरुचि और उदासीनता उत्पन्न होती है।... अंतिम दृश्य से अत्यन्त शान्तिपूर्ण उदासीनता बरसती है। कवि की दृष्टि में मनुष्य-जीवन का सच्चा अंत करुण क्रन्दन नहीं, पूर्ण शान्ति है।... इस प्रकार कवि ने सारी कथा का शांत रस में पर्यवसान किया है।"² देखना होगा कि वस्तुस्थितियाँ क्या हैं।

हीरामन द्वारा पद्मावती के नख-शिख सौन्दर्य का वर्णन सुन कर उन्मादित हुए रत्नसेन का उसे प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय करना कथा के पूर्वार्द्ध की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। उस रूप की प्राप्ति उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य बन जाता है-

अब मैं फनिग भृंगि के करा। भँवर होऊँ जेहि कारन जरा।।

फूल फूल फिरि पूछौं जौं पहुँचौं ओहि केत।

तन नेवछावर कै मिलौं ज्यौं मधुकर जिउ देत।।³

चला भुगुति माँगै कहँ साजि कया तप जोग।

सिद्ध होऊँ पद्मावति पाँ हिरदै जेहि क बियोग।।⁴

उसे पद्मावती की प्राप्ति होती है, जिसे ले कर वह चितौड़ वापिस लौटता है। यहाँ तक शुक्ल जी ने कथा को पूर्वार्द्ध माना है। इस प्रकार कथा के पूर्वार्द्ध की सर्वप्रमुख घटना अनेक विघ्नों के बावजूद अपने आदर्श परिणाम तक पहुँचती है। लेकिन यह निश्चित ही पूरी कथा का परिणाम नहीं है।

जिसे आचार्य ने कथा का उत्तरार्द्ध कहा है, उसकी प्रमुख घटनाएँ राघव चेतन द्वारा पद्मावती का नख-शिख वर्णन सुन कर अलाउद्दीन का उन्मादित हो कर उसे हस्तगत करने का निश्चय, इसके लिए चितौड़ का घेरा और रत्नसेन को छल पूर्वक वंदी बनाना, राजा देवपाल की कुटिनी कुमुदिनी द्वारा पदिभनी को पथभ्रष्ट करने का प्रयास, सुल्तान अलाउद्दीन की भेजी छद्मवेषी दूती योगिनी का ऐसा ही प्रच्छन्न प्रयास, गोरा-बादल द्वारा छल से रत्नसेन को मुक्त करवाना, रत्नसेन का वापिस चितौड़ आना, रत्नसेन और देवपाल का द्वन्द्वयुद्ध, दोनों की मृत्यु, पद्मावती और नागमती का पति की चिता के साथ सती होना, अलाउद्दीन का चितौड़ पर आक्रमण तथा भयंकर युद्ध, स्त्रियों का जौहर और किले का पतन है।

मेरे विनम्र निवेदन में जायसी ने यत्नपूर्वक स्वयं को घटनाओं का वर्णन और चित्रण करने तक सीमित रखा है। इसीलिए घटनाओं के नियामकों के कर्मों का विश्लेषण उनका उद्देश्य नहीं है। परिणामस्वरूप कर्मों के अच्छे बुरे, कैसे भी परिणाम दिखाने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। हाँ, उन्होंने निश्चित विचारवाद के तहत रत्नसेन के चरित्र का वक्ती तौर पर अवमूल्यन स्पष्ट तौर पर किया है। अज्ञात कारणों से उनकी इस चेष्टा पर उनके समीक्षकों ने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। बहरहाल इसका भी कारण कवि का वही विचारवाद है। महाकवि का पूरा जोर सर्वोत्तम वर्ग की महत्ता के स्थापन पर है और पद्मावत में नागमती के अतिरिक्त समस्त चरित्र मूलतः इसी वर्ग के हैं। इसलिए रचनाकार ने 'अंत' में नागमती के अलावा समस्त चरित्रों को समान संवेदना प्रदान की है। "संसार की गति" का विवेचन जायसी का उद्देश्य नहीं है। वे औसत मनुष्यों के समाजों के विश्लेषक नहीं हैं। इसमें उनकी कोई रुचि नहीं है। पद्मावत महामानवों की कथा है। इसमें वर्णित समाज महाप्रभुओं के हैं। उनके वर्णित कर्म भी वैसे ही विलक्षण हैं।

पद्मावत में "किसी सत्पात्र का" "चित्त को क्षोभ" नहीं देने वाला "भीषण परिणाम" नहीं दिखलाने की बात वस्तुस्थितियों के विपरीत जाती प्रतीत होती है। रत्नसेन को दिल्ली के कारगर में पैशाचिक यातनाएँ दी गईं, घोर अपमान दिया गया।⁵

शुक्ल जी की दृष्टि में रत्नसेन निश्चित ही सत्पात्र है। उसकी ऐसी अवस्था यदि "भीषण परिणाम" नहीं है, तो उक्त शब्दों के अर्थ मेरी समझ के बाहर हैं। यदि 'परिणाम' से आचार्य का तात्पर्य 'जीवन' से अलग हट कर अंतिम परिणति, माने कि 'मृत्यु' से है- तब भी पद्मावत के नायक का अंत न तो 'शांतिपूर्ण उदासीनता' बरसाता है और न ही गौरवशाली है। वह प्रत्येक दृष्टि से करुण एवं विडम्बनात्मक है। स्वयं आचार्य के मत में राजा देवपाल प्रत्येक दृष्टि से रत्नसेन से हीनतर था, "कुंभलनेर का राजा देवपाल रूप, गुण, ऐश्वर्य, पराक्रम, प्रतिष्ठा किसी में भी रत्नसेन की बराबरी का न था।"⁶ रत्नसेन-देवपाल के द्वन्द्वयुद्ध में देवपाल का चरित्र पूरी तरह से 'बराबरी' का है, किञ्चित कुछ ऊपर ही है। सुन्दर स्त्री के लिए होने वाले युद्ध में व्यापक नरसंहार को बचाने के लिए द्वन्द्वयुद्ध का प्रस्ताव उसी की ओर से आता है, रत्नसेन की तरफ से नहीं। अनावश्यक विध्वंस को रोकने का श्रेय उसी को जाता है। इसके अतिरिक्त उसका शौर्य भी कम नहीं है- दोनों राजा अंततः मृत्यु को प्राप्त होते हैं। पहला वार देवपाल ही करता है चढ़ि देवपाल यह बात अलग है कि देवपाल तुरंत ओर मृमवत् रत्नसेन चितौड़ आने

के कुछ देर बाद मरता है।⁷

केवलमात्र शत्रु का सिर काट कर अपने पैरों में बाँधने के प्रण को पूरा करने से रत्नसेन का अवसान "पूर्ण शक्ति" की वर्षा नहीं करने लगता। शुक्ल जी ने उसके इस भीमकर्म में "प्रतिकार की प्रबल वासना" देखी जो "राजपूतों का जातिगत लक्षण है।"⁸ जायसी ने अलाउद्दीन एवं उसके सिपहसालार सरजा के समक्ष रत्नसेन को म्रियमाण निर्वीय कीट जैसा चित्रित करके⁹ उससे उसकी जातीय तेजस्विता पहले ही छीन ली थी। देवपाल ने तो केवल दूती ही भेजी थी। इसके विपरीत अलाउद्दीन ने उसे अपनी पत्नी देने की 'आज्ञा' दी थी। उसका तो रत्नसेन ने बड़ा सम्मान किया, भारी भोज दिया, अलौकिक भेंटें दी, ब्रह्म के विशेषणों से विभूषित किया।¹⁰ तब यह "प्रतिकार-वासना"¹¹ कहाँ चली गई थी, यह आचार्य शुक्ल ने नहीं बतलाया। रत्नसेन यदि गोरा और बादल की भाँति अलाउद्दीन से युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त होता, तो अवश्य ही उसका अंत गौरवशाली कहा जा सकता था। लेकिन वह तो अपने से हीनतर चरित्र के प्रहार से मरा। इससे उसका महत्त्व कमतर होता है। उसकी मृत्यु मेरी राय में पूरी तरह से 'भीषण' नहीं, तो उसके आस-पास की अवश्य है। प्रश्न उपस्थित होता है कि मौलिक कथा के सर्जक कलाकार को उसकी ऐसी मृत्यु की योजना करने की क्या आवश्यकता थी? उत्तर महाकवि के सर्वश्रेष्ठवंदन के विचारवाद में सन्निहित है। देवपाल राजा था, लेकिन रत्नसेन के समक्ष उसकी हस्ती बहुत कम थी।¹² इसके विपरीत अलाउद्दीन की क्षमताएँ अपार थी।¹³ स्वयं रत्नसेन बारंबार इस तथ्य को स्वीकार करता है।¹⁴ इसीलिए देवपाल और अलाउद्दीन की पद्मावती को प्राप्त करने की कामनाओं में रत्नसेन की प्रतिक्रियाएँ संपूर्णतया अलग-अलग तरह की हैं। जायसी की कथा में राजा देवपाल श्रेष्ठ, राजा रत्नसेन श्रेष्ठतर और अलाउद्दीन श्रेष्ठतम है। पद्मावती अपने विषय 'सौन्दर्य' में श्रेष्ठतम है। श्रेष्ठ द्वारा श्रेष्ठतर के पास की श्रेष्ठतम 'वस्तु' पर कुदृष्टि रखना अक्षम्य 'अपराध' है, जिसकी सजा मृत्यु है—

जब लागि आइ तुरुक गढ़ बाजा। तब लागि धरि आनौं तौ राजा।¹⁵ इसके विपरीत श्रेष्ठतम की श्रेष्ठतर के पास की श्रेष्ठतम 'वस्तु' को हस्तगत करने की इच्छा पद्मावत में निःसृत विचारवाद के अनुसार स्वाभाविक है। इसीलिए राजा सुल्तान के समक्ष नतमस्तक ही दीखता है। पत्नी देने के अलावा वह उसकी हर माँग पूरी करता है, उसकी भर्त्सना करने वाले एक शब्द का भी उच्चारण नहीं करता। इस प्रकार रत्नसेन का अंत वास्तव में रस की दृष्टि से करुण और परिणाम की दृष्टि से 'भीषण' है। लेकिन जायसी ने विशेष प्रयोजन के कारण ऐसी ही व्यवस्था की। इस योजना के द्वारा उन्होंने अलाउद्दीन को रत्नसेन के देहांत तथा उसके फलरूप पद्मावती-नागमती के सती होने का उत्तरदायी बनने से बचा लिया। वह भयंकर विध्वंस करके भी इस अपराध से बरी है। उसकी वजह से हुई विनाशलीला में जौहर औसत स्त्रियों ने किया, युद्ध में औसत पुरुष ही मरे। प्रभु-वर्ग की किसी इकाई के अवसान की जिम्मेवारी उस पर नहीं आती। उसने तो इस वर्ग के सदस्यों को बचाने की पूरी-पूरी कोशिशें की। पद्मावती जौहर नहीं कर ले—इसलिए उसने प्रथम प्रयत्न में चित्तौड़ गढ़ को तोड़ने का प्रयास नहीं किया।¹⁶ बंदी बनाने के बाद रत्नसेन की हत्या भी उसने इसीलिए नहीं की क्योंकि वैसी स्थिति में भी पदिमनी जौहर कर लेती। हाँ, रानी के सती होने के उपरांत वह नरसंहार करने के लिए स्वतंत्र था, जो उसने किया। इसीलिए जायसी ने उसको अक्षय कीर्ति का अधिकारी मानते हुए उसके यश की सुगंध के शाश्वत होने की भविष्यवाणी की।¹⁷ आश्चर्य है कि आचार्य रामचन्द्र

शुक्ल, श्री माताप्रसाद गुप्त, श्री वासुदेव शरण अग्रवाल और प्रोफेसर विजयदेव नारायण सहित जायसी के किसी भी समीक्षक का ध्यान इस बेहद सीधी दिशा की ओर नहीं गया।

अन्य सत्पात्रों में पद्मावती और नागमती आती हैं। उनके अवसान की समीक्षा भी आवश्यक है क्योंकि वह भी आलोचकों को गौरवशाली प्रतीत हुई है। शुक्ल जी के अनुसार इस अवसर पर प्रेम अपना बल दिखलाता है। विपत्ति के इस समय में "आशा नहीं है। इसीलिए विलाप के स्थान पर "लोक की ओर दृष्टि फेरे हुए पूर्ण आनंदमयी और प्रशांत" भावनाओं के दर्शन होते हैं। "यह दृश्य हिन्दू-स्त्री के जीवन-दीपक की अत्यन्त उज्वल और दिव्य प्रभा है जो निर्वाण के पूर्व दिखाई पड़ती है।"¹⁸ यदि 'पद्मावत' एक 'त्रासदी' है, तो दोनों रानियों का 'सती' होना 'आनंदमयी' अवस्था कदापि नहीं है। जीवित अवस्था में आनंदोल्लास के साथ पति की चिता में भस्म हो जाना व्यक्तिपरक अर्थों की दृष्टि से दोनों रानियों के चरित्र को उदात्त बनाता प्रतीत हो सकता है, लेकिन सामाजिक-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर उनका अंत अतीव कष्टप्रद एवं विकराल है। नागमती को तो स्मृति-पटल से भी बहिष्कृत कर दिया गया। उसका 'परिणाम' तो 'भीषण' है ही। इसके अतिरिक्त कथा का 'अंतिम दृश्य' उनका स्वर्ग जाना नहीं होकर चित्तौड़ का अलाउद्दीन के अधिकार में आना है। राजनीतिक दृष्टि से यह सुल्तान का उत्कर्ष नहीं, तो और क्या है? राघव चेतन "बुरा पात्र" है। प्रबंधकाव्य में वह रत्नसेन से विश्वासघात करके अलाउद्दीन का विश्वासपात्र बनता है। चित्तौड़ के विनाश की भूमिका वह ही लिखता है। प्रबंधकाव्य में उसका पूरा उत्कर्ष वर्णित है। अर्थप्राप्ति के अपने लक्ष्य में वह पूर्ण सफल होता है। जायसी ने उसे अपार सुख-समृद्धि प्राप्त करते दिखाया है।¹⁹ यही नहीं आर्थिक चरमोत्कर्ष के साथ उसे सामाजिक प्रतिष्ठा भी मिलती है। वह महत्त्वपूर्ण व्यक्ति का दर्जा पाता है। अलाउद्दीन रत्नसेन के जले में नमक छिड़कता हुआ राघव चेतन को अपने साथ उस चित्तौड़ में ले जाता है, जिससे अपने द्रोह किया था।²⁰

कथा के अंत में वह अलाउद्दीन के साथ 'सुगंध' रूप में पुनरुज्जीवित हो उठता है। इससे अधिक 'उत्कर्ष' और कुछ नहीं हो सकता। जीवन मनुष्य की अमूल्य उपलब्धि है। पद्मावत में अकाल-बलात् मृत्यु केवल 'सत्पात्रों' की होती है, "बुरे पात्र" अंततोगत्वा जीवित, विजयी एवं सुखी हैं। (सत्पात्र और बुरे पात्र शब्द शुक्ल जी के हैं।) अज्ञात कारणों से समीक्षकों ने इन बिन्दुओं की ओर ध्यान नहीं दिया है। पद्मावती, रत्नसेन, नागमती और अलाउद्दीन के चरित्रों का मूल्यांकन करते समय अन्य अनेक खण्डों के भावविह्वलकारी प्रसंगों में अंतर्निहित विचारवाद से परिचित होने का प्रयत्न आवश्यक है।

संदर्भ

1. स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद
2. जायसी— ग्रंथावली की भूमिका, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 68
3. पद्मावत, जायसी, 125/7, 11/7
4. वही, 126/12/1
5. वही, 578, 580/2 से 5, 642/3 से 7
6. जायसी, ग्रंथावली की भूमिका, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 131
7. पद्मावत, 646
8. जायसी— ग्रंथावली की भूमिका, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 124
9. पद्मावत, 543
10. वही, 606
11. जायसी— ग्रंथावली की भूमिका, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 124
12. पद्मावत, 639

13. वही, 531
14. वही, 532
15. वही, 645/4
16. वही, 602
17. वही, 644
18. जायसी ग्रंथावली, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 34-35
19. पदमावत, 488 / 1 से 3
20. वही, 552/2